Topic 84

— कर्म कारक — ।

कारके इत्यधिकृत्य

कर्तुरीप्सिततमं कर्म

कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात् । कर्तुः किम् ? माषेष्वश्वं बध्नाति । कर्मण ईप्सिता माषाः, न तु कर्तुः । तमब्ग्रहणं किम् ? पयसा ओदनं भुङ्क्ते । कर्मेत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणम् आधारनिवृत्त्यर्थम् । अन्यथा गेहं प्रविशति इत्यत्रैव स्यात् ॥

कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने के लिए इष्टतम कारक कर्मसंज्ञक हो यह 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र का अर्थ है । कर्तुः किम् ? माषेष्वश्वं बध्नाति अर्थात् माषों में चरते हुए अश्व को बाँधता है (जिससे माष चारा न हो) यदि कर्तृपद का ग्रहण न करेंगे तो कर्म अश्व को अभीष्टतम माष शब्द की भी कर्म संज्ञा हो जायेगी और माषेषु के स्थान में 'माषान्' यह अनिष्ट प्रयोग हो जायेगा । कर्तृपद के ग्रहण करने पर माष की कर्म संज्ञा नहीं होती, क्योंकि माष कर्म (अश्व) को चरने के लिए अभीष्टतम है कर्ता को नहीं । उसे तो प्रकृत वाक्य में माषरक्षार्थ बंधन क्रिया के द्वारा अश्व ही अभीष्टतम है ।

तमब्ग्रहणं किम् ? तमपो ग्रहणं यत्र इसे बहुव्रीहि समास के द्वारा ईप्सिततम इस पद-समुदाय में प्रश्न है । अर्थात् इस पद के ग्रहण न करने पर भी 'कर्तुः क्रियया कारकं कर्म' इस वाक्य में योग्यता के कारण उद्देश्यम् । इस पद का अध्याहार

P.T.O.

होगा। तब 'कर्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्' ऐसी वृत्ति होगी। अर्थ होगा कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने के लिए इष्टतमभूत कारक कर्मसंज्ञक हो। ऐसी स्थिति में सकल इष्टसिद्धि हो ही जायगी फिर ईप्सिततम का ग्रहण क्यों किया है. ग्रंथकार समाधान करता है – 'पयसा ओदनं भुङ्क्ते'।। अभिप्राय यह है कि भोजन कर लेने के पश्चात् भी दुग्ध के लोभ से ओदन भोजन में कोई प्रवृत्त होता है। अथवा वैद्यराज द्वारा दुग्ध से ओदन भोजन करो ऐसा ~~पथ्य~~ पथ्य का निर्देश करने पर दुग्ध भात खाने में प्रवृत्त होता है। इन दोनों स्थितियों में ओदन-भोजन ही इष्टतम है, पथ्य तो उसका उपकरण है। अतः यदि ईप्सिततम ग्रहण न करेंगे तो भोजनोद्देश्य पयः की भी कर्मसंज्ञा हो जायगी जो अभीष्ट नहीं है।

'कर्मेत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणम् आधारनिवृत्त्यर्थम्। अन्यथा गेहं प्रविशति इत्यत्रैव स्यात्। इसका स्पष्टीकरण यह है कि 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' इस सूत्र से ही कर्मपद की अनुवृत्ति आ जायगी फिर 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इस सूत्र में कर्मपद का ग्रहण क्यों किया? इसका उत्तर है कि यह कर्मपद का ग्रहण आधारपद की अनुवृत्ति की निवृत्ति के लिए है। आशय यह है कि 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' सूत्र में आधारपद की अनुवृत्ति आती है। वह यहाँ भी आ जायेगी। अर्थात् 'एकयोगनिर्दिष्टानां सह वा प्रवृत्तिः सह वा निवृत्तिः' यह नियम है। अतः उक्त 'कर्तुरीप्सिततमं' सूत्र में 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' से कर्म की अनुवृत्ति के साथ अनुप्राप्त आधार पद की भी अनुवृत्ति आ जायगी। अर्थात् कर्ता को क्रिया के द्वारा प्राप्त करने को जो अभीष्टतम कारक होगा उसकी कर्मसंज्ञा हो जायेगी। अतएव ~~गेहं~~ 'गेहं प्रविशति' में भी कर्मसंज्ञा होगी, क्योंकि कर्ता को 'प्रविशति' इस क्रिया के द्वारा प्राप्त करने को अभीष्टतम गेह है।

अनभिहिते ।। इत्यादि सूत्र ।।

२.५

आदि अध्याहार्य होगा और उस अनुक्त कर्ता 11
"कर्तृकरणयोस्तृतीया" सूत्र से तृतीया विभक्ति
होगी। कृत - लक्ष्म्या सेवितः इस वाक्य में हरिः
इत्यादि कर्म उक्त है जो अध्याहार्य है। उसमें
प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा होती है। यहाँ सेवितः।
इस पद में सेव् धातु से कर्म में 'क्त' प्रत्यय
होने से सेवित शब्द निष्पन्न होता है। लक्ष्मी के द्वारा
भूतकालिक सेवन का विषय (हरि) इत्यादि है।
'शत्य' शब्द में शत शब्द से ताद्धित
'यत्' प्रत्यय 'क्रीत' इस कर्मार्थक क्त प्रत्य-
यांत शब्द के अर्थ में हुआ है, अतः इससे कर्म
का अभिधान होता है। 'प्रप्त' शब्द से अभिहित ग्राम
आदि शब्द में द्वितीया नहीं होगी, अपितु प्रातिपदिकार्थ
मात्र में प्रथमा ही होगी, क्योंकि जिस ग्रामादि को आनन्द
प्राप्त हुआ वह प्राप्तानंद है।

तथायुक्तं चानीप्सितम् ॥

ईप्सिततमवत् क्रियया युक्तम् अनीप्सितमपि कारकं
कर्मसंज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति।
ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते ॥

पूर्वोक्त ईप्सिततम के समान क्रिया
से युक्त अनीप्सित कारक भी कर्मसंज्ञक हो।
'ग्रामं गच्छन्' इत्यादि वाक्य में तृण स्पर्श अभिष्ट
नहीं है, अपितु आनुषंगिक है, फिर भी अनभीष्ट
तृण की कर्म संज्ञा होती है। चूंकि वाक्य
कर्तृप्रधान है, अतः उस अनुक्त कर्म में
द्वितीया विभक्ति होती है ... ... विभक्ति

अनुक्त कर्मादि में विभक्ति का विधान होता है। जो क्रिया से उक्त नहीं (साक्षात् संबद्ध नहीं) वह अनुक्त कहलाता है।

कर्मणि द्वितीया ॥

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात् । हरिं भजति । अभिहिते तु कर्मणि 'प्रातिपदिकार्थ मात्रे' इति प्रथमैव । अभिधानं तु प्रायेण तिङ्कृत्तद्धितसमासैः । तिङ् - हरिः सेव्यते । कृत् - लक्ष्म्या सेवितः । तद्धित - शतेन क्रीतः शत्यः । समासः - प्राप्तः आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः । क्वचिन्निपातेनाऽभिधानम् । यथा - विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम् । साम्प्रतमित्यस्य हि युज्यते इत्यर्थः ॥

अनुक्त कर्म में द्वितीया हो । हरिं भजति । इस उदाहरण में हरि अनुक्त कर्म है, अतः उसमें द्वितीया विभक्ति होती है, क्योंकि 'भजति' क्रिया से साक्षात् संबंध 'भक्तादि' कर्ता कारक का है, कर्म का नहीं। इसी प्रकार 'शिष्यो गुरुं सेवते ।' 'पितरं वन्दते पुत्रः । वटुर्वेदं पठति । विष्णुं भजति वैष्णवः । रामः पत्रं लिखति । ईश्वरं ध्यायति यतिः' इत्यादि उदाहरण जानने चाहिए। 'अभिहिते तु कर्मणि' अर्थात् क्रिया से साक्षात् संबंध रखने वाले कर्म में (कर्मवाच्य वाक्य के कर्म में) तो प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति ही होती है। यह अभिधान प्रायः तिङ्, कृत्, तद्धित तथा समास द्वारा होता है। क्रम से उदाहरण दिये जा रहे हैं। तिङ् हरिः सेव्यते । इसमें 'सेव्यते' इस तिङन्त क्रिया पद से साक्षात् संबद्ध हरि पद कर्म है क्योंकि यहां ~~क्रिया~~ क्रिया से वाच्य कर्म है, अतः उसमें प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा

अनिच्छा से खाता है। यहाँ भी अनीप्सित 'विष' की कर्म संज्ञा हुई और उसमें द्वितीया प्रयुक्त हुई। इसी प्रकार 'कुर्वन् कर्णं कण्डूयते', 'पत्रं लिखन् खादति मोदकं सः', 'ग्रामं व्रजन् पश्यति शस्यशोभाम्' इत्यादि वाक्यों में 'कर्णं' आदि पदों की कर्म संज्ञा जाननी चाहिए।